Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 2, February-2019, ISSN 2230-7540

गुप्तकालीन कृषि, कृषक एवं भूमि व्यवस्था

Sonu Kumar*

M.Phil in History, MDU, Rohtak

सार – *कृषि शब्द 'कृष्' धातु से बना है जिसका अर्थ कूँड़ बनाना या जोतना होता था। इसमें जोतना, खोदना, बोना, निराना, काटना, गाहना, सलना आदि सभी कार्य आते थे। जोतनेवाले को खिलाना-पिलाना, बीज तथा बैलों की व्यवस्था भी कृषि के अर्थ के भीतर था हाल और बैल कृषि के मुख्य साधन से। कृषक स्वयं कषि करता या कृषक-मजदूर से करवाता था। हल चलाने से भूमि में जो कूँड़ बनता उसे सीता कहते थे। भूमि कई प्रकार की होती थी। केदार उस खेत को कहते जहाँ हरी फसल बोई जाती और जिसमें पानी की सिंचाई होती थी। हरी फसल से लहलहाते खेतों का समूह कैदारक, खलिहानी के समूह खल्या तथा खलिनी, खेती योग्य भूमि कर्ष और जितनी भूमि हल की जोत में आ जाती उसे हल्य या सीत्य कहते थे। धान के खेत को व्रीहेय, शालि के खेत को शालेय, जौ का खेत यव्य, चावल का खेत यवक्य, साठी का खेत शष्टिक्य और भाँग का खेत भंग्य-भांगीन कहा जाता था।*

----------X----------

गुप्तकाल में कृषि जीविका का सबसे प्रधान आधार बन गया। ब्राह्मणों, मठों और मन्दिरों को व्यापक रूप में भूमि दान की गई। चरागाहों, जंगलों, जलाश्यों और मछलीगाहों को भी राजा द्वारा दान दिए गए। दान पानेवाले भूस्वामियों का असर कृषि एवं भूमिव्यवस्था पर खराब पड़ा। भूस्वामी मध्यवर्ती वर्ग का उदय होने से सीमावर्ती, पिछड़े और जनजातीय इलाकों में नवीन तत्वों का प्रवेश हुआ। किसानों की स्वतन्त्रता और गतिशीलता पर प्रतिबन्ध लगाए जाने लगे। राजा द्वारा दान किए गए गाँव के निवासियों को जमीन से बाँध दिया गया और उन्हें बेगार के लिए मजबूर किया जाने लगा। गुप्तकालीन भूमिव्यवस्था इन तत्त्वों से प्रभावित रही।

भूमिः-

आर्थिक दृष्टि से गुप्तकाल में असरदार बदलाव होने की जानकारी तत्कालीन स्त्रोतों से होती है। धीरे-धीरे राजकीय आय का प्रमुख स्त्रोत व्यापार न रहकर कृषि होता गया। गुप्तकालीन राजस्व एवं भूमि व्यवस्था पर विकेन्द्रित शासन व्यवस्था एवं परवर्ती आर्थिक अवस्था का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

गुप्तकाल के प्रारम्भिक चरण में कृषि एवं कृषकों की दशा कैसी थी - इस पर याज्ञवल्क्य ने प्रकाश डाला है। खेत की सीमा सामन्त, वृद्धि पुरूष, गोप (चरवाहे) और वनचारी (व्याध्र आदि) निश्चित करते थे। ऊँची भूमि, भूँसी, वृक्ष, सेतु (जलप्रवाह बन्ध), गड्ढ़ों, पत्थर आदि से चिह्नित करके खेतों की सीमा निर्धारित की जाती थी (9.150-51)। मर्यादा (खेत के बीच में बनी हुई मेढ़) की तोड़ने और सीमा पार कर अधिक जोतनेवाले और धमकी देकर खेत छीन लेने वालों को दंड देने का प्रावधान था। जिस खेत पर सेतु खेत-स्वामी या अन्य के द्वारा बनाया जाता उसका लाभ खेत-स्वामी एवं राजा को होता था। बटाई पर खेत जोतने वाला अगर बीच में ही काम छोड़ देता तो स्वामी दूसरे को खेत जोतने को दे देता और पहलेवाले बटाईदार को भी थोड़ा अन्न देता था। जिसका भैंस, गाय, बकरा या भेड़ दूसरे का खेत चरता उसे दंडित करने का प्रावधान था (9.155-63)।

साँढ़, यज्ञ विधि से छोड़े गए पशु, 10 दिन से कम की बयाई हुई गाय, अपने गिरोह से भटककर आया हुआ पशु, जिसके पालनेवाला कोई न हो और जो राजा या दैव से पीड़ित हो-ऐसे खेत चरनेवाले पशु को छोड़ दिया जाता था। गाँव के लोगों की इच्छा और राजा की आज्ञा से गौओं के चरागाह के लिए भूमि बना के दी जाती थीर्। इंधन (जलावन की लकड़ी) और पुष्प कहीं से बेरोकटोक ले जाने का प्रचलन ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों के लिए था। गाँव के चारों और 100 धनुष स्थान और कस्बे (खर्बट) के चारौ और दो सौ धनुष भूमि छोड़ दी जाती थी। राजा अपनी इच्छानुसार भूमियों को वितरित करने का अधिकारी था। व्यक्ति उसी समय तक भुमि से लाभान्वित हो सकता था।

www.ignited.in

फसलें:-

पत्थरों से रहित एवं कोमल मिट्टीवाली जमीन वृक्षों एवं फसलों के लिए हितकार होते थे। कटहल, अशोक, केला जामुन, लीची, अजार, अंगूर, पालीवत, नींबू आदि की टहनियों को सफाई से काटकर, गोबर मिट्टी का लेप चढ़ाकर, किसी कटै वृक्ष की जड़ पर या उसके तने पर काटकर लगाया जाता था। कलत लगाने की यह सर्वोत्तम विधि थी। जिन वृक्षों की टहनियाँ नहीं होती उन्हें माघ या फालगुन में टहनियों वाले वृक्षों को पौष में तथा लम्बी टहनियों वाले वृक्षों को सावन-भादों में रोपा जाता था। पौधे या कुछ प्रौढ वृक्ष को दूसरी जगह लगाने से पूर्व घी, खसखस, शहद, वायविडंग, दूध गोबर आदि का मिश्रण बनाकर जड़ से लेकर तने एवं शाखाओं तक लगाकर दूसरे स्थान पर ले जाकर लगाया जा सकता था। इस प्रक्रिया के सहयोग से पुराने पत्ते भी नहीं सूखते थे।

गर्मी के दिनों में सुबह और शाम जाड़ा में ऐ दिन छोड़कर और वर्षा ऋतु में सूखी जमीन देखकर आवश्यकतानुसार सिंचाई की जाती थी। जामुन, बेंत, कदम्ब, गूलर, नीबू (बिजौरा), अंगूर, लीची, अनार, वंजुल, करंज, तिलक, कटहल, वानीर, तिमिर आदि अनूप (जलप्राय), प्रदेशों में पैदा होते थे। दो पेड़ों में 20 हाथ (30फुट) दूरी उत्तम, 16 हाथ मध्यम और 12 हाथ अधम मानी जाती थी। बहुत पास-पास पेड़ लगाने से उनकी जड़ें आपस में उलझतीं तथा बाँह से उनके पत्ते व टहनियाँ भी आपस में टकरातीं और वृक्ष अच्छी तरह फलते-फूलते नहीं थे। रोगी वृक्ष का तेज धारदार हथियार से विकृत अंग, टहनी या पत्ते आदि को सावधानीपूर्वक निकाल दिया जाता था। इसके बाद उस कटे स्थान पर तथा आसपास बिडंग, घी एवं साफ गीली मिट्टी का लेप कर दिया जाता था।

फल, सब्जी, कोदों (विशेष चावल), अलसी, मटर, गेहूँ, मूँग, धान, उड़द राजमा, जौ सरसो, गन्ना, तिल आदि कृषकों के आय के साधन थे। कृषि योग्य भूमि तीन प्रकार की होती थी- परती भूमि, जो सरकार के अधीन रहती थी, कृषि योग्य भूमि, जिस पर खेती होती थी किन्तु वह साम्राज्य के अधीन थी एवं निजी स्वामित्ववाली कृषि योग्य भूमि।

गुप्तकाल की भूमि-सनद या घोषणा पत्र एसे दासों का उल्लेख नहीं करते हैं जो आर्थिक उत्पादन में लगे हैं। यद्यपि नारद 15 प्रकार के पासों का वर्णन करते हैं किन्तु घरों में कार्य करनेवाले दास होते थे जिनके कार्य मुख्य रूप से सफाई एवं अन्य अपवित्र वस्तुएँ ढोना था। जो आर्थिक उत्पादन के कार्यों में रत थे उन्हें नारद ने दास की संज्ञा नहीं दी है दास प्रथा का विकास गुप्तकाल में पूर्ण रूप से नहीं हो पाया था। (6-7वीं सदी से पूर्ण विकास शुरू हुआ।)

निरन्तर किए गए भूमिदानों के फलस्वरूप गुप्काल के बाद के हिदनों में भारत में समान्तवाद का विकास हुआ। उस समय के बहुत से स्त्रोतों से कृषिदासों का पता चलता है जो इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि यद्यपि उनकी भूमि उनसे छीन ली गई थी फिर भी वे उत्पादन कार्य में लगे थे।

गुप्तकाल में कुछ व्यक्तियों को विशिष्ट शत्रों के अन्दर विशाल क्षेत्रों का स्वामित्व प्रदान कर दिया गया। ये पूर्ण रूप से इन क्षेत्रों के शासक की तरह व्यवहार करते थे। वे अपनी शत्रो पर किसानों को खेत जोतने को देते थे। यह उनकी इच्छा पर निर्भर था कि वे किसी भी क्षण कृषि कार्य में रत इन किसानों से भूमि छीन सकते थे। इस प्रकार हम पाते हैं कि गुप्त साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में धीरे-धीरे अर्द्धसामन्तवादी व्यवस्था जोर पकड़ती जा रही थी जिसके फलस्वरूप खेतिहर वर्ग की स्थिति दयनीय होती जा रही थी।

गुप्तकाल में किसान एवं कृषि मजदूर वर्ग की स्थिति और भी खराब हो गई जब उन पर अन्य करों के अलावा विष्टि नामक कर लाद दिया गया। वस्तुतः विष्टि कर के अन्तर्गत इनहें बिना परिश्रमिक दिए उसे क्षेत्र के स्वामी को अपना कुछ श्रम वेचना पड़ता था। यह एक प्रकार की बेगारी थी। मौर्यकाल में बेगारी का कार्य सिर्फ दासों एवं किराए के मजदूरों से लिया जाता था और उनका निरीक्षण राज्य के कर्मचारी करते थे। किन्तु गुप्तकाल में यह कार्यगरी वर्ग के हर व्यक्ति से लिया जाने लगा एवं इसके अन्तर्गत हर प्रकार के कार्य आते थे। गुप्तकाल में सर्वहारा वर्ग के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह अपने स्वामी के घरेलू कार्य बिना किसी पारिश्रमिक के किया करें। इसके अतिरिक्त ये मनमानी कर वसूल करते थे जिसका बोझ यह सकने में गरीब किसान वर्ग झुकता चला जा रहा था।

जमीन का स्वामित्वः-

गुप्तकाल मौर्यों की केन्द्रित शासन-व्यवस्था एवं उत्तर गुप्तकाल की सामन्ती विकेन्द्रित शोषण-व्यवस्था के मध्य का संक्रान्तिकाल था। फलतः इसके राजस्व एवं भूमि-व्यवस्था पर विकेन्द्रित शासन-व्यवस्था एवं परवर्ती आर्थिक अवस्था का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि गुप्त शासकों को भूमि पर कोई अधिकार नहीं था। खेत जोतनेवाले कृषक ही उसके स्वामी होते थे। एच.एन.

www.ignited.in

घोषाल एवं एस.के. मैती का मानना है कि भूमि पर राजा का स्वामित्व होता था। भूमि पर निजी स्वामित्व भी था।

तत्कालीन कानूनज्ञाता बृहस्पति एवं नारद यह स्वीकारते हैं कि किसी व्यक्ति को किसी जमीन का कानूनी हक मिल जाने पर वह उसका स्वामी हो जाता था। कोई भी व्यक्ति अपने अधीन भूमि का स्वामी उस समय तक माना जाता जब तक कि शासन की ओर से स्वामित्व प्रदान नहीं कर दिया जाता था। इस काल में विभिन्न ताम्रपत्र इस सत्य को इंगित करते हैं कि उनका योग स्वामितव प्रदान करने के प्रमाण के रूप में किया जाता था।

गुप्तकाल की अधिकांश अवधि में शासक एवं शासन तन्त्र प्रभावशाली ढंग से कार्यों का सम्पादन करता था। ऐसी स्थिति में राज्य की भूमि पर राजा के स्वामित्व को नकारा नहीं जा सकता। राजा अपनी इच्छानुसार इन भूमियों को वितरित करने का अधिकारी था। व्यक्ति उसी समय तक भूमि से लाभान्वित हो सकता था जब तक कि वह शासक को एक निश्चित कर देता रहे। अतः ऐसा लगता है कि उपज एवं कृषि से सम्बद्ध अन्य कर और कुछ नहीं बल्कि शासक द्वारा व्यक्ति विशेष को दिए गए भूमि स्वामित्व के बदले एक प्रकार का किराया होता था। बृहस्पति ने एक प्रसंग के दौरान शासक के भूमिपति होने की बात कहीं है।

राजा धार्मिक संस्थाअें को विशाल भूमि के टुकड़े दान में देता था। वह विभिन्न प्रकार के भूमि कर वसूलता था एवं राज्य के कई विशाल कृषि योग्य एवं अन्य जमीन का वह प्रत्यक्ष रूप से स्वामी था। राज्य की विभिन्न खानों एवं बहुमूल्य पत्थरों का स्वामित्व भी उसी के पास था।

इतना होते हुए भी पाते हैं कि धीरे-धीरे जमीन पर ग्राम समुदायों का अधिकार एवं प्रभाव बढ़ता जा रहा था। व्यक्तिगत स्वामित्व भी बिना ग्राम समुदाय की सम्मति के सही नहीं समझे जाते थे। भूमि के क्रय-विक्रय एवं उसके निजी स्वामित्व स्थानान्तरण में भी गाँव के प्रमुख व्यक्तियों की सम्मति आवश्यक थी। ए.एल. बाशम, अल्तेकर और आर.सी. मजूमदार का विचार है कि इन भूमियों पर गाँवों का सामूहिक अधिकार होता था क्योंकि राजा खास जमीन (राज्य की भूमि) को विक्रय करने के समय वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों की सम्मति अवश्य लेता था। इन विद्वानों का कहना है कि इन खास जमीनों पर केवल राजा का एकाधिकार नहीं बल्कि ग्राम-समुदाय भी इस अधिकार का एक पक्ष होता था।?

इस समय धार्मिक संस्थाओं को विशाल क्षेत्र प्रदान किए गए जिसे अग्रहार या ब्राह्मणीय दान (छठी सदी के पश्चात् गोत्र तथा वैदिक शाखा के आधार पर ब्राह्मणों का वर्गीकरण किया गया।) कहते और यह राजस्व कर से मुक्त होता था। यद्यपि इस दान का लाभ बाद में पुजारियों के परिवार भी उठा सकते थे किन्तु यह राजा की इच्छा पर निर्भर करता था। राजकीय अधिकारियों को भत्ता के स्थान पर भूमिदान मिलने लगे थे जो अप्रत्यक्ष रूप से राजा की स्थिति को निर्बल करने के लिए काफी थे। राजा चाहते हुए भी उनके भूस्वामित्व को खत्म नहीं कर सकता था क्योंकि उनके राजनीतिक रूप से विद्रोही बनने का डरी हमेशा बना रहता था। इस स्वामित्व के कारण अधिकारी पहले की अपेखा शक्तिशाली एवं कुछ दृष्टि से स्वतन्त्र भी हो जाते थे।

धार्मिक संस्थाएँ दान की हुई भूमि की स्वतन्त्र अधिस्वामी हो जाती थीं क्योंकि वे न केवल वहाँ से राजस्व वसूल करतीं बल्कि उस क्षेत्र में पड़नेवाली खानों का स्वामित्व भी उन्हे मिल जाता था। अधिकांश मामलों में उन्हें अपने क्षेत्रों का शासन प्रबन्ध भी सौंप दिया जाता था जो शासनतन्त्र को निर्बल करने के लिए प्रबल कारण बना। नए स्वामी न सिर्फ कर वसूलते अपितु वहाँ की प्रजा को अपना स्वामित्व मनवाने को मजबूर करते थे। इस तरह राज्य के अन्दर ही कई स्वतन्त्र राज्य हो गय जो केन्द्रीय शासन को चुनौती देते रहते थे।

नवीन बाट:-

कृषकों द्वारा उतना ही अतिरेक पैदा करने में दिलचस्पी ली गई जिसकी खपत स्थानीय लोगों के बीच हो सके क्योंकि निर्यात में पूर्ण असुरक्षा थी। उजड़े शहर के अधिकांश निवासी गाँवों की ओर लौट चले। इससे पूर्व गाँव का कृषक परिवार अपना गुजर-बसर जहाँ साल में एक बार अनाज पैदा करके कर लेता वहाँ अब बर्बाद शहरों से लौटे लोगों के कारण ग्रामीण परिवार में संख्या बढ़ी। फलतः साल में तीन-तीन फसलें पैदा की जाने लगी; पैदावर में जितनी वृद्धि हुई उससे अधिक वृद्धि खानेवाले लोगों की हुई। राजकीय संरक्षण के अभाव में सिंचाई की दशा खराब रही; वर्ष में तीन-तीन फसलें पैदा करने और खाद के अभाव में भूमि पर बढ़ते दबाव के कारण उसकी उर्वरता-शक्ति धीरे-धीरे कम होती गई। परिणामस्वरूप कृषक-परिवारों के बीच नवीन आर्थिक संकट की समस्या खड़ी हुई। इस संकट से पारिवारिक तनाव उत्पन्न होने लगे। छोटी जमीनों के भी बँटवारे होने लगे। परिणामस्वरूप, जमीन नापने के छोटे और नए औजार तथा नाप-तौल के छोटे-छोटे बाट दिखाई देने लगे।

गुप्तयुग से ही खेतों के माप का वर्णन मिलने लगता है। एक हाल से जितनी भूमि जोत में रखी जाती उस माप का नाम हल था। 9 इंच के बराबर 1 पाद और इस माप को पादावर्त 8

www.ignited.in

खंड के समान माप में समझा जाता था। 2 पाद को 1 हस्त (1.5 फीट) कहते थे। 4 सौ हस्त भूमि को 1 नालुक कहते थे। सम्भवतः नल 118 इंच का डंडा था जिससे भूमि नापी जाती थी। 5वीं सदी से कुल्यवाप क्षेत्र माप के लिए उत्तर भारत में प्रयोग होता था। इस शब्द के 2 खंड हैं-कुल्य $ वाप। कुल्य की समता एक टोकड़ी से करें तो इसका अर्थ होगा कि एक टोकरी बीज के बोने योग्य भूमि (कुल्य = टोकरी; वाप = बोना)। गुप्तकाल में 8 द्रोण एक कुलयबीज के बराबर था। मात्र बीज बोने योग्य भूमि को द्रोणवाप कहा जाता था। धान का द्रोणवाप होता था। 8 द्रोण का 1 कुल्यवाप और 5 कुल्यवाप का 1 पाटक होता था। एक कुल्य बप 16 मन अन्न को कहते थे। 14 बीघा खेत में 16 मन अनाज होता था। कुछ विद्वानों के अनुसार कुल्यवाप भूमि को 1 एकड़ माना है। एक माणि के बराबर 1 मन होता था। कुछ क्षेत्रों में 1 माणि बीज से 1 बीघा खेत बोए जाते थे।

ब्राह्मणों को जो भी गाँव दान में दिए गए वे कर मुक्त थे। इन गाँवों से राजा द्वारा वसूल किए जाने वाले सारे कर ब्राह्मणों को हस्तांतरित कर दिए जाते थे। इसके अतिरिक्त लाभ-भोगियों को दान में प्राप्त गाँवों के निवासियों पर शासन करने का अधिकार किया गया। दान में दिए गए गाँवों में सरकारी अधिकारियों और राजकीय परिवारों का प्रवेश वर्जित कर दिया गया। अपराधियों को दंड देने का अधिकार बाद में चलकर लाभ-भोगियों को दे दिया गया। इस तरह भूमि पर राजकीय नियन्त्रण कम होते गए। छठी शताब्दी से कृषकों को दान-भूमि से ही जुड़े रहने पर दबाव दिया जाने लगा। कृषि और कृषकों की खराब दशा का कारण वर्तमान विरोधी तत्त्व नहीं बल्कि पूर्वजन्म का फल एवं नक्षत्र-राशि दोष बताया गया। कृषि प्रौद्योगिकी के रूप में अरघट्ट का प्रवेश 5वीं सदी के आसपास ही हो गया किन्तु इसका व्यापक उपयोग 7 वीं सदी के बाद ही आरम्भ हुआ (लल्लनजी गोपाल, ऐस्पेक्ट्स ऑफ़ द् हिस्ट्री ऑफ़ एग्रिकल्चर इन एनशिएंट इंडिया, वाराणसी, 1980)। शूद्रों के साथ वैश्य भी कृषि कार्य से जुड़ गए और याज्ञवल्क्य नेइन्हें भीशूद्र ताया। आरित श्रमिक कृषि कार्य के लिए भर्ती किए जाने लगे।

कृषकों की दशा दिन पर दिन खराब होती गई। कलियुग के माध्यम से भविष्य शैली में बताया गया कि मेहनतकश लोग अपने-अपने काम छोड़कर, राजाओं की खातिर अनाज और दाल बोएँगें, फसलो की रखवाली करेंगे, उन्हें काटेंगे, उनकी दौनी करेंगे और उनका संग्रह करेंगे; राजाओं की खातिर वे गन्ने बोएँगे, कोल्हू बनाएँगे और चलाएँगे और गन्ने के रस को उबालकर गुड़ बनाएँगे; राजा की खातिर फूलों और फलों के बगीचे लगाएँगे और चलाएँगे और फल इकट्ठा करेंगे। और विविध प्रकार की तमाम पैदावार को एकत्र करके शाही भंडारों को ठसाठस भर देंगे और अपने घर खाली पड़े बखारों की ओर नजर तक उठाकर नहीं देखेंगे।

दिन पर दिन हो रही खराब दशा से कृषकों के बीच विद्रोह की भावना नहीं फैले, इसे ध्यान में रखते हुए गुप्तकालीन ज्योतिष एवं भविष्य की तथाकथित जानकारी रखने वालों के माध्यम से बताया गया कि सूर्य के शुभ राशि में, अर्थात् जन्मकुंडली के दसवें स्थान में, स्थित होने पर मनुष्य कृषक बनकर कृषि-कर्म करता है। यदि इस राशि में सूर्य किसी अनुकूल ग्रह के घर में होता है, और तो कृषि-क्रम का सम्बन्ध किसी दुष्ट राजा की (कृषि-सम्बन्धी) सेवा करने से होता है, और अगर सूर्य किसी अनिष्टकर (पाप) ग्रह के घर में होता है तो इस तरह का कर्म जोर-जबर्दस्ती की स्थितियों के अधीन-शारीरिक दंड और बन्धन यापवराधीनता की स्थिति में करना पडता है।

अभिलेख और गुप्तकालीन भूस्वामित्व:-

गुप्तकाल में भूमिदान से सम्बद्ध अभिलेखों में काफी वृद्धि हुई। साहित्य, सिक्का, स्थापत्य और अभिलेख इस काल के अध्ययन के लिए प्रमुख स्त्रोत हो जाते हैं। इस समय जमीन की खरीद-बिक्री का (पंजीयन) करने के लिए विशेष पट्टे या राजपत्र का प्रयोग किया जाने लगा। क्षत्रपों एवं कुषाणों के काल में पाए गए अभिलेखों में जमीन की बिक्री का उल्लेख नगण्य है किन्तु गुप्तकाल से काफी मात्रा में मिलने लगा।

चौथी शताब्दी से अनुग्रह अनुदानों (कर मुक्त भूमिदान) की संख्या बढ़ी और धीरे-धीरे इसके स्वरूप में बदलाव होते गए। प्रथम चरण में अनुदान अस्थायी अर्थात् सम्बद्ध व्यक्ति के कार्यकाल तक ही चलते थे किन्तु दूसरे चरण में वे अधिक-से-अधिक वंशागत स्वरूप ग्रहण करने लगे। फलतः निजी भूस्वामियों के अधिकारों की मजबूती बढ़ी। उन्होंने केन्द्रीय प्रशासन से काफी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। कुछ अनुदानों से सम्बद्ध अभिलेखों या राजपत्रों में यह उल्लिखित किया जाने लगा कि "यह जमीन जब तक 'सूर्य रहेगा' अर्थात् सदा-सदा के उपयोग के लिए दिया जाता था।"

जिन अधिकारियों को अस्थायी तौर पर जमीनें दी गईं उन्हें बाद में चलकर कुछ विशेषाधिकार (उन्मुक्ति अधिकार) राज्य की और से प्रदान किए जाने लगे। स्थायी और अस्थायी भूमिदान पानेवाले अधिकारियों ने अब उन जमीनों पर काम करने वालों पर कुछ प्रशासकीय कानून चलाना शुरू किया। ऐसे अधिकारियों पर केन्द्र कभी-कभी कड़ाई करता था किन्तु 5वीं शताब्दी के बाद राजाओं ने निजी भूमि से सम्बद्ध

www.ignited.in

लगभग सभी वित्तीय, प्रशासनिक तथा विविध कार्यों को स्वयं भूस्वामियों को ही सौंपना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए, सेना रखने, लगान नहीं देने वालों को दंडित करने, लगान की दर घटाने या बढ़ाने, लगान माफ करने आदि। खनों पर भी निजी स्वामित्व राजा की ओर से दिया जाने लगा। इस तरह तमाम विशेषधिकार से वंचित होने लगे। विशेषाधिकार हस्तान्तरण की सारी प्रक्रिया ताम्राभिलेखों के माध्यम से सम्पन्न की जाने लगी। फलतः अस्थायी भूस्वामित्व की स्थिति वंशानुगत सामन्त (कर देनेवाला राजा) के और निकट आने लगी। फलतः किसान इन भूस्वामियों के प्रभुत्व के अधीन आ गए। निः सन्देह यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चली और अभी काफी समय तक राज्य ने ग्रामीण क्षेत्रों में अपने कई प्रशासनिक कृत्यों को अपने हाथ में ही रखे रखा।

चौथी शताब्दी और उसके बाद की भारतीय स्त्रोत सामग्री में 'ग्रामदान' के अधिकाधिक उल्लेख पाए जानेका अर्थ स्पष्ट था कि राजा इन गाँवों से कर वसूलने का अधिकार अन्य को दे दिया था; जमीन नहीं दिया किन्तु किसान पहले जिस व्यक्ति को कर देता था वह अब कोई और हो गया। धीरे-धीरे ग्राम समुदाय के स्वतन्त्र सदस्य निजी भूस्वामियों के अधीन हो गए। ये भूस्वामी अपनी प्रभुता को बढ़ाने को प्रयत्नशील थे। अभी ऐसे 'दान' सामन्ती स्वरूप के नहीं थे, किनतु सामन्ती सम्बन्धों की ओर निश्चित प्रवृत्ति अब लक्षित होने लगी। राज्याधिकारियों को ये सामन्त वेतन के स्थान पर सेवा के बदले 'ग्रामदान' दिया करते थे।

इसके बाद के चरण में जमीन का हस्तान्तरण होने के साथ-साथ उस जमीन पर कृषि एवं अन्य कार्य करने वाले लोगों सहित जमीन का हस्तान्तरण होने लगा अर्थात् कृषकों के स्वामी भी बदलने लगे। धीरे-धीरे ऐसे कृषकों की दशा भूदासों जैसी होने लगी। 6-7 वीं सदी में इन विशेषताओं से परिपूर्ण सामान्तवाद की परिपक्व तस्वीर दिखाई देने लगी। दुर्गा, लक्ष्मी सरस्वती, गणेश और कार्तिक की मूर्तियाँ ऊपर-नीचे जिस पिरामिडनुमा शैली में दुर्गापूजा के अवसर पर बिहार या बंगाल में दिखाई देती उसी पिरामिडनुमा शैली में समान्तवाद की तस्वीर पहले से ही बन चुकी थी। केन्द्रीय शासक के समक्ष पड़े सामन्त छाटे बने रहे थे किन्तु अपने हलाके में वे उसी प्रकार सम्प्रभु थे जिस प्रकार दुर्गा के साथ गणेश तीसरे स्थान पर दिखाई देता किंतु महाराष्ट्र में वह सम्प्रभु हो जाता है।

विशेष सन्दर्भ:

1. ब्रजनन्दनसिंह यादव, 'कलियुग के वर्णन और समाज का प्राचीनकाल से मध्यकाल में संक्रमण', इतिहास, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की शोध-पत्रिका, दिल्ली, अंक 1, जनवरी, 1992, पृ॰ 66-99

2. बंगाल में गंगा की मुख्यधारा पद्मा के उत्तर में स्थित प्रदेश पुंड्र और दक्षिण का भाग वंग कहलाता था; विजयेन्द्रकुमार माथुर, ऐतिहासिक स्थानावली, नई दिल्ली, 1969, पृ॰ 562

3. वही, 4.15.16, मनोहरलाल द्विवेदी, कात्यावन यज्ञ पद्धति विमर्श, दिल्ली, 1988, पृ॰ 82-84

4. भगवतशरण उपाध्याय, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ, 1969, पृ॰ 194-95

5. भगवतशरण उपाध्याय, पूर्वोद्धत, पृ॰ 198

6. बौद्धधर्म का इतिहास (तारनाथ), पटना, 1971, पृ॰ 57

7. देवयाज्ञिकं पद्धति, पृ॰ 131, मनोहरलाल द्विवेदी, पूर्वोकृत, पृ॰ 85

8. कात्यायन श्रौतसूत्र, 4.15.11

Corresponding Author

Sonu Kumar*

M.Phil in History, MDU, Rohtak

sonukumarsharma415@gmail.com

www.ignited.in